मैं दिल्ली हवाईअड्डे के टर्मिनल 3 में अपने व्यक्तिगत अनुभव के विवरण के साथ इस संदेश की शुरुआत करूँगा। अनुभव यह प्रदर्शित करने के लायक है कि जो लोग किसी अकादमी से संस्थागत रूप से जुड़े नहीं हैं, वे कैसा व्यवहार करते हैं, क्योंकि वे लगभग यह निर्धारित करने के लिए अधिकृत हैं कि अकादमिक गतिविधियों को कैसे संचालित किया जाना चाहिए। मुझे उस अनुभव पर ध्यान देना चाहिए जो मुझे हवाई अड्डे पर हुआ था, जब मैं दोपहर में त्रिवेंद्रम जाने वाली उड़ान लेने के लिए वहाँ गया था। मैं अपने एक दोस्त से मिलने का इंतजार कर रहा था। मैंने सुना कि कोई मुझे देख कर कह रहा था कि दादा (बांग्ला में बड़े भाई) आप मुझे पहचानने में असफल रहे। मैंने यह कहकर माफी मांगी कि यह मेरे बुढ़ापे के कारण हुआ। जब हम आपस में बातचीत कर रहे थे, उन्होंने मुझे उस शैक्षणिक संस्थान के निदेशक से मिलवाया जहाँ वे काम करते हैं। वह एक सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं और उन्हें सेवानिवृत्ति के बाद की यह जिम्मेदारी दी गयी है जिसके लिए कुछ विशेषाधिकार प्राप्त अधिकारियों को देश की राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा चुना जाता है। आईएएस अधिकारियों को निम्नलिखित तरीके से वर्गीकृत किया जा सकता है: कई ऐसे हैं जिन्होंने सेवा में रहते हुए मानव व्यवहार की उत्कृष्ट समझ विकसित की है। कुछ ऐसे भी हैं जो ज्ञान और ज्ञान के स्रोतों की खोज करके खुद को समृद्ध करने की दृष्टि से शिक्षाविदों के संपर्क में रहते हैं। उन्हें यह स्वीकार करने में शर्म नहीं आती कि उनका कर्तव्य उन्हें अपने विशिष्ट विद्वतापूर्ण हितों को आगे बढ़ाने के लिए समय और झुकाव की अनुमति नहीं देता है। वे यह स्वीकार करने में भी संकोच नहीं करते कि "सार्वभौमिक रूप से मांगी जाने वाली इस सेवा में शामिल होने के लिए, आपको एक बार भाग्यशाली होना होगा और जब तक आप सरकार के उन विशेषाधिकार प्राप्त अधिकारियों के वर्ग में हैं, तब तक लाभ मिलते रहेंगे"। "स्टील फ्रेम" सेवा के इस समूह का एक और समूह अभी भी उत्कृष्ट 'रिकॉर्ड कीपर' बनकर सेवानिवृत्त हुआ है।

नवंबर, 2022 में त्रिवेंद्रम की अपनी यात्रा के दौरान, मैं एक सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी से टकरा गया। मेरे एक परिचित ने उनसे मेरा परिचय कराया। उनके साथी ने बड़े गर्व से उन्हें उस संगठन के शीर्ष बॉस (जो एक सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी हैं) के रूप में पेश किया, जिससे वे संबंधित थे। सच कहूँ तो मुझे याद नहीं कि मैं उनसे कभी मिला भी था

या नहीं। फिर भी, उसने मुझे यह साबित करने के लिए विवरण प्रदान किया कि वह मुझसे परिचित था। कहानी की शुरुआत अब होती है। जैसे ही मुझे पता चला कि सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी उस संगठन का नेतृत्व कर रहे थे, जिसने एक अकादमिक पत्रिका प्रकाशित की थी, जिसके साथ मैं संपादकीय समिति के सदस्य के रूप में विश्व स्तर पर ख्यात एक अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा प्रकाशित एक 'पीयर रिव्यूड' पत्रिका से इसकी शुरुआत से ही जुड़ा था। बाद में सम्पादक दल के सदस्यों की राय न मानने के कारण सम्पादक के कठोर आचरण के कारण मुझे जाना पड़ा। संपादक को लगा कि चूँकि वह पत्रिका का संपादक है, इसलिए उसकी बात अंतिम है और वह अपने अन्य साथियों की बात सुनने को तैयार नहीं था। पत्रिका, दूसरे शब्दों में, उनकी दासता थी और उसने उसी के अनुसार व्यवहार किया। मेरा संगठन से कोई संपर्क नहीं था और मुझे पत्रिका की सामग्री को नियमित रूप से देखने का अवसर भी नहीं मिला था। यह स्पष्ट था कि लेखों को उनकी योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि अन्य विचारों पर प्रकाशित करने के लिए चुना गया था, जिन्हें सार्वजनिक डोमेन में नहीं बताया जा सकता है, हालांकि उनमें से कई शैक्षणिक संस्थानों से जुड़े हैं और अकादमिक रूप से नियमित रूप से लेखों को पढ़कर खुद को अपडेट कर रहे हैं- समीक्षित पत्र-पत्रिकाएँ पहले ही इस मुद्दे को संगठन के उपयुक्त मंचों पर उठा चुकी हैं। अपनी अकादमिक चिंता से और बल्कि थोड़ी मूर्खता से मैंने इस भावना को उस संगठन के बॉस तक पहुँचाया जो मेरी तरह दक्षिण भारत की उड़ान भर रहे थे। यह शायद घोर मूर्खता ही थी कि मैं यह नहीं सोचता था कि आईएएस अधिकारी, खासकर जो सेवानिवृत्त हो चुके हैं, उन्होंने कभी भी आलोचना को सही भावना से नहीं लिया। ऐसा हुआ। जैसे ही मैंने प्रकाशित होने वाले लेखों की गुणवत्ता में लगातार गिरावट के बारे में अपनी स्पष्ट राय व्यक्त की, उन्होंने यह कहते हुए अपनी निराशा व्यक्त की कि अकादमिक रूप से सम्मानित न होने के बावजूद किसी को भी पत्रिका को बदनाम करने की अनुमति नहीं देंगे क्योंकि गुणवत्ता की परवाह किए बिना किसी को भी अपने उद्यम पर गर्व महसूस करना चाहिए। यह एक विकृत राष्ट्रवादी तर्क था। मैं तुरंत समझ गया कि रचनात्मक आलोचना सुनने के लिए वह सही व्यक्ति नहीं थे। इससे पहले कि यह वास्तव में गर्म हो, मैंने यह कहकर बातचीत समाप्त कर दी कि मैंने आपके दृष्टिकोण का सम्मान किया है इसलिए "आइए असहमत होने के लिए सहमत हैं"। हमने एक दूसरे को यह

कहते हुए छोड़ दिया कि कुछ नहीं हुआ था। उसका साथी, जिसने मुझे जानने का दावा किया था, अपने बॉस के साथ मेरी बातचीत के दौरान शायद इसलिए चुप रहा क्योंकि वह सुरक्षित खेलना चाहता था।

उपरोक्त कथा का एक बहुत विशिष्ट उद्देश्य है। एक अकादमिक के रूप में जो विश्वभारती की एक प्रशासक के रूप में भी सेवा करता है, मुझे दृढ़ता से लगता है कि जब तक हम आत्मनिरीक्षण नहीं करते हैं कि भारत विश्व स्तर पर शैक्षणिक सीढ़ी में ऊपर जाने में विफल क्यों है, हमारा भविष्य अंधकारमय है। हमें इस बात पर गौर करना चाहिए कि 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक रूप से मुक्त होने के बावजूद चीन या एक छोटे शहर-सह-देश सिंगापुर के उच्च प्रभाव कारक वाले (High Impact Factor) लेखों को तैयार करने की क्षमता वाले अकादमिक हब के रूप में प्रतिष्ठा कैसे हुई? और भारत का अकादमिक रूप से इतना पतन क्यों हुआ? हमारे अच्छे और मेधावी छात्र देश छोड़कर पश्चिम क्यों जाते हैं? वे भी लौटने को तैयार नहीं हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि पश्चिमी देशों में काम करने वाले कई भारतीय विद्वान उच्च शैक्षणिक स्तर के कार्यों का निर्माण करते हैं। यह स्पष्ट रूप से एक विरोधाभासी स्थिति है क्योंकि एक गहन और निष्पक्ष विश्लेषण शायद हमें इस अकादमिक पतन की जड़ तक ले जाएगा।

ऐसा लगता है कि समस्या स्कूल में स्ट्रीम के चुनाव से शुरू होती है। आम तौर पर, जो दसवीं कक्षा में अच्छा स्कोर करते हैं, वे साइंस स्ट्रीम चुनते हैं; बाकी हमेशा अपने झुकाव के कारण नहीं बल्कि मजबूरी में अन्य स्ट्रीम चुनते हैं क्योंकि वे उन लोगों में शामिल होने के योग्य नहीं होते हैं जिन्हें विज्ञान स्ट्रीम में प्रवेश दिया जाता है। हमें यहाँ एक चेतावनी जोड़नी होगी। कुछ मेधावी छात्र ऐसे भी होते हैं जो विज्ञान के अलावा अन्य धाराओं में भी प्रवेश लेते हैं क्योंकि वे अपनी जानबूझकर पसंद के मामले में गैर-विज्ञान विषयों का अध्ययन करना चाहते हैं। दूसरी समस्या विद्यालय से लेकर उच्च शिक्षा तक कक्षाओं में प्रसारित शिक्षण की गुणवत्ता से उत्पन्न होती है। यदि आज के छात्रों में वह गुण नहीं है जिसकी उनसे अपेक्षा की जाती है, तो कल के शिक्षक (जो आज के छात्र हैं) बेहतर कैसे हो सकते हैं? अगर हम केवल

छात्रों और शिक्षकों दोनों को दोष देते हैं तो हम अपनी जिम्मेदारी से भाग रहे हैं। शुतुरमुर्ग की तरह छिपने (खतरे के सामने आंखें बंद करने) के बजाय आइए बैल को उसके सींग से पकड़ें।

एक अकादमिक प्रशासक के रूप में, मैं तीन दशकों से अधिक समय तक विदेशों के कई विश्वविद्यालयों और भारत के कई प्रमुख विश्वविद्यालयों में शिक्षक होने के अपने व्यक्तिगत अनुभव से प्रश्न पर ध्यान केन्द्रित करूँगा। इसका एक कारण संभवतः अध्यापन को एक पेशे के रूप में अपनाने का अपेक्षाकृत आसान तरीका है। समय के साथ, हमने देखा है कि कैसे कई स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की भर्ती की जाती है। भारत के कई प्रांतों में शिक्षकों के चयन में मेरिट पर छूट है। चयन में जो निर्णायक होता है वह योग्यता नहीं, बल्कि इसके अलावा अन्य कारण होते हैं। यदि मैं यह स्पष्ट रूप से कहूँ हूँ कि चयन प्रक्रिया कैसे पटरी से उतरी तो मुझे बहिष्कृत कर दिया जाएगा यदि लिंचिंग नहीं की गई तो मैं परिणाम को स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ क्योंकि अब मैं अपने करियर और जीवन के अंतिम फेज में हूँ। इसलिए, परिणाम की परवाह किए बिना कड़वा सच बताना चाहिए।

शिक्षा जगत को जो चीज सबसे ज्यादा पटरी से उतारती है, वह है राजनेताओं का नियमित हस्तक्षेप, उन्हें इसका अंदाजा भी नहीं हों सकता है कि देश के भविष्य पर इसका कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यहाँ तक कि स्कूलों और कॉलेजों के प्रिंसिपल और विश्वविद्यालयों के वाइस चांसलर के चयन में भी प्रक्रिया राजनेताओं के निर्देश से मुक्त नहीं थी। मुझे बताया गया था, हालांकि मेरे पास इस बात के पुख्ता सबूत नहीं हैं कि ये पोस्ट भी उच्च प्रीमियम पर बेचे गए थे। इसलिए, एक बार जब किसी को शैक्षणिक क्षेत्र में राजनीतिक आकाओं के वरदहस्त से महत्वपूर्ण पद दिया जाता है, तो संबद्ध व्यक्ति को उन्हें प्रसन्न रखना पड़ता है या वे उस पद के लिए भुगतान की गई राशि को इकट्ठा करने में व्यस्त रहते हैं। किसी भी तरह से, यह शिक्षण संस्थानों के सामने आने वाली कठिनाइयों को बढ़ाता है। यह भारत में शैक्षणिक गिरावट के मुख्य कारणों में से एक है। अध्यापकों का सम्मान न होने से विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का वातावरण तत्काल दूषित हो जाता है। इसमें एक विशेष कथन यह है, अपने शिक्षकों के साथ छात्रों का लगातार दुर्व्यवहार। कुलपति

के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान मैं व्यक्तिगत रूप से कई बार ऐसी स्थितियों का शिकार हुआ हूँ। मैं अपने बचाव पर अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहता; इतिहास इसका आकलन करेगा। अधिकांश भारतीय परिसरों में समग्र गिरावट दिखाई दे रही है। यह न केवल एक अभिनव कार्य होगा बल्कि सामाजिक रूप से उपयोगी भी होगा यदि एक शोधकर्ता गिरावट के स्रोतों और संभावित समाधानों पर ध्यान केंद्रित करे। काम आसान नहीं है लेकिन इतना मुश्किल भी नहीं है।

अब मैं इस गिरावट को रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा बनाई गई संस्थाओं पर टिप्पणी करना चाहूँगा। यह भारत की बदकिस्मती है कि शैक्षणिक संस्थान भी नौकरशाहों द्वारा नियंत्रित नहीं होने पर भी लोकतांत्रिक रूप से चुने गए मंत्री के साथ गठबंधन द्वारा शासित होते हैं, जिनके पास हमेशा शिक्षा को संभालने की विशेषज्ञता नहीं हो सकती है। नतीजतन, अकादमिक-प्रशासक तथा नौकरशाहों और मंत्री के बीच संबंध पूरी तरह से परेशानी मुक्त नहीं लगते हैं क्योंकि अकादमिक मुद्दों पर उनका दृष्टिकोण हमेशा उपयुक्त नहीं हो सकता है। जिन लोगों को स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में सर्वोच्च पदों पर पक्षपात द्वारा नियुक्त किया गया था, वे बिना शर्त आत्मसमर्पण कर देते हैं, क्योंकि वे राजनेताओं, मंत्रियों या सत्ताधारी राजनीतिक दल के राजनीतिक आकाओं के ऋणी होते हैं। जो ज्ञान के प्रसार में लगे इन संस्थानों के गलती से शीर्ष अधिकारी बन गए, उन्हें खामियाजा भुगतना पड़ा। उन्हें उन शिक्षकों के साथ मिल कर प्रताड़ित किया गया, जिन्होंने अध्यापन के अपने प्राथमिक काम को खुशी-खुशी त्याग दिया और छात्रों को अनियंत्रित शैक्षणिक पथ पर ले जाने के लिए मार्गदर्शन किया। इन अकादमिक-प्रशासकों के लिए, जीवन उनके समकक्षों की तरह सुखद नहीं लगता है जो प्रवाह के साथ तैरने का निर्णय लेते हैं।

यहाँ एक या दो तकनीकी बिंदु प्रासंगिक हैं। सीखने के लिए हमारे केंद्र उन मूल्यों को प्रसारित करने में विफल होते हैं जो छात्रों के अभिन्न अंग हैं। यह सच है कि परिवार नागरिक गुणों की पौधशाला है; यदि यह उस भूमिका को प्रभावी ढंग से नहीं निभाता है, तो शैक्षणिक संस्थानों की जिम्मेदारी है कि वे इस जिम्मेदारी का निर्वहन करें। मुझे यकीन है कि हम सभी इस बात से सहमत हैं कि अतीत में शिक्षकों और छात्रों के बीच जो मेल मिलाप था, ऐसा

लगता है कि लगभग गायब हो गया है। नतीजतन, शिक्षक अब वैसी भूमिका का निर्वाह नहीं करते जो उन्होंने अतीत में अपने छात्रों को अच्छे नागरिक के रूप में अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए तैयार करने में निभाई थी। तो, हम अपने छात्रों से नागरिकों के रूप में अपने कर्तव्यों के प्रति संवेदनशील होने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?

दूसरा बिंदु फंडिंग एजेंसियों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अपनाई गई उन नीतियों से संबंधित है, जो स्वरूपतः लोकलुभावन हैं। कारणों का पता लगाना मुश्किल नहीं है। लेकिन मैं चुप रहूँगा। नॉन-नेट फेलोशिप अच्छे इरादों के साथ शुरू की गई थी, हालांकि इसका दुरुपयोग किया गया, क्योंकि डेटा से पता चलता है कि सफलता दर उतनी प्रभावशाली नहीं थी जितनी उम्मीद की जा रही थी। गैर-नेट फेलोशिप धारक चार साल की फेलोशिप का आनंद लेते हैं और यूजीसी संकलित-इनपुट भी चार साल के बाद ड्रॉप आउट की संख्या दिखाते हैं जो नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों के लिए बड़ी चिंता का विषय है। हमें कथन को योग्य बनाना चाहिए क्योंकि कुछ गैर-नेट फेलोशिप धारक हैं जो न केवल गंभीर हैं बल्कि अच्छे काम भी करते हैं।

एपीआई (अकादमिक सूचकांक निर्देशक) की शुरूआत के अपने नुकसान हैं। चूंकि शिक्षकों को अपनी पदोन्नति के लिए पर्याप्त एपीआई अंक प्राप्त करने की आवश्यकता होती है, इसलिए शिक्षकों के बीच एक चूहा दौड़ शुरू हो जाती है। यूजीसी ने पत्रिकाओं की एक सूची तैयार की जो शिक्षकों को उनके लेख प्रकाशित करने पर अंक देती थी। मैं नहीं जानता कि क्या यह अनुमान लगाना गलत होगा कि यूजीसी सूची में ऐसी कई पत्रिकाएँ हैं जिन्हें अकादमिक रूप से गैर-चुनौतीपूर्ण माना जा सकता है। फिर भी यह प्रक्रिया प्रशंसा के योग्य है, क्योंकि यह गैर-उत्पादक शिक्षाविदों को कम से कम प्रकाशित करने के लिए मजबूर करती है कि वे क्या उत्पादन करते हैं। हालांकि प्रणाली एक पूर्ण प्रमाण नहीं है क्योंकि (क) यूजीसी सूची में पत्रिकाओं का मानक एक समान नहीं है क्योंकि चयन के कठोर तरीके से चयन नहीं हुआ है; नतीजतन, यह आरोप कि बड़ी संख्या में पत्रिकाओं को शामिल नहीं किया जाना चाहिए में वास्तविकता है । और (ख) न केवल कई ऑनलाइन पत्रिकाएं शिक्षकों को मोटी फीस के बदले में प्रकाशित करने के लिए फंसाने के लिए सामने आई हैं, बल्कि कई छद्म

लेखक भी सामने आए हैं जो पदोन्नति चाहने वाले शिक्षकों के लिए लिखते हैं। उदाहरण पर्याप्त हैं।

तीसरा बिंदु मूल्यांकन के लिए पीएचडी शोध प्रबंध प्रस्तुत करने के संबंध में हाल के बदलावों से जुड़ा है। आजकल, अकादमिक चोरी की पूरी तरह से जाँच की जाती है, हालाँकि यह पुष्टि नहीं की जा सकती है कि अकादमिक चोरी की जाँच की विधि का हर जगह सख्ती से पालन किया जाता है। यूजीसी की नई शर्त के अनुसार, पीयर-रिव्यूड जर्नल्स में कम से कम तीन निबंधों के प्रकाशन की शर्त को वापस ले लिया गया है। मुझे सही कारण नहीं पता; लेकिन, यह स्पष्ट है कि इस तरह की शर्त को वापस लेने से विश्वविद्यालयों की शैक्षणिक स्थिति को बढ़ाने में कोई मदद नहीं मिलती है जैसा कि 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने जोर दिया था।

अंत में, जो सबसे अधिक चिंताजनक है, वह शिक्षाविदों के स्व-घोषित संरक्षकों का उदय है, जो शिक्षाविदों की कमियों को दूर करने के लिए अनिच्छुक हैं और विशिष्ट पत्रिकाओं में ऐसे लेख प्रकाशित करते हैं जो कम कठोर समीक्षा प्रक्रियाओं का गुज़रते प्रतीत होते हैं, संभावित को अधिकतम नुकसान पहुँचाते हैं। क्योंकि उन्हें बताया जाता है कि निबंध की अकादमिक योग्यता अन्य गैर-शैक्षणिक कारकों की तरह महत्वपूर्ण नहीं है। मैं अभी भी आशान्वित हूँ, क्योंकि मेरी चिंता जो मैंने दिल्ली हवाईअड्डे पर आईएएस अधिकारी को बताई थी, निश्चित रूप से उन्हें मेरे विश्लेषण के आधार पर उन बिंदुओं पर विचार करने के लिए प्रेरित करेगी कि कैसे लेखों ने धीरे-धीरे अपनी अकादमिक अपील खो दी। अगर मैं एक अनुभवी आईएएस अधिकारी को मनाने में सफल हो जाता हूँ, तो मैं एक शिक्षक और एक शोधकर्ता के रूप में अपनी भूमिका पूरी कर चुका होता। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम विद्या की देवी सरस्वती की सेवा करेंगे, बशर्ते कि हम शिक्षक और शोधकर्ता के रूप में जो कुछ भी करना चाहते हैं, उसका ईमानदारी से पालन करें। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षण ही एकमात्र ऐसा पेशा है जहाँ इससे जुड़े लोगों को पढ़ाई के लिए वेतन के रूप में मोटी रकम दी जाती है। यह हम ही हैं जिन्हें यह समझना चाहिए कि अकादमिक गतिविधियों को गंभीरता से लेने की आवश्यकता है क्योंकि देश और भारतीयों का भविष्य उन्हीं पर निर्भर

करता है। इसका तात्पर्य यह है कि सरस्वती उन लोगों पर कृपा बरसाती हैं, जो पथभ्रष्ट और आलसी होने के बजाय पूरे मन से शिक्षा में लगे रहते हैं, और तभी हमारा विश्व/जगत गुरु बनने का मिशन दूर नहीं हो सकता; अन्यथा, यह एक कोरा नारा बनकर रह जाएगा।

विद्युत चक्रवर्ती

कुलपति, विश्वभारती